International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 4; July 2017; Page No. 40-42

मुक्तिबोध के साहित्य में प्रतिबिंबित युग–संवेदना

डॉ0 स्नेह लता सिंह

385C/71A/2 तिलकनगर, अल्लापुर, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

मुक्तिबोध युगीन साहित्य की मूल पृष्ठभूमि राजनीति है। एक ऐसी राजनीति जिसका उद्देश्य व्यापक सामाजिक बदलाव हो। मुक्तिबोध मार्क्सवाद से प्रभावित थे 'आधुनिक कविता का दार्शनिक पृष्ठभूमि' शीर्षक लेख में मुक्तिबोध की दार्शनिक विचारधारा प्रकट हुई है, जिसमें मार्क्सवाद का विशेष स्थान है। मुक्तिबोध ने मार्क्सवाद को संकीर्ण रूप में ग्रहण नहीं किया है। मार्क्सवादी दर्शन उनके लिए विकासमान ज्ञान था। युग की सर्वोच्च आकांक्षाएं, शोषण मुक्त समाज की रचना के स्वप्न व्यक्तिवादी समाज के दुर्गुण इत्यादि विषय मुक्तिबोध की मार्क्सवादी विचारधारा को अधिकाधिक प्रमाणिक और जीवन्त बनाती है। मुक्तिबोध ने अपने समय की विद्रूपताओं को अपनी कविता में कुछ इस तरह से उतारा कि वे संवेदना के स्तर पर बहुत भीतर उतर कर मार करती हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक तक भारतीयों के बीच एक पश्चिमीकृत बुद्धिजीवी वर्ग का उदय हो चुका था और इस वर्ग के नेता ही नये और आधुनिक भारत के आलोकदाता बने। इस वर्ग पर पुरानी भारतीय संस्कृति का ऊर्जादायक प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव ने भारत के राष्ट्रीय, आत्म परिचय और विकास के लिए कार्य करने में गूढ़ शक्ति प्रदान की। राष्ट्रीय चेतना के साथ ही साथ प्रादेशिकता, साम्प्रदायिकता और जातिवाद का भी उदय हुआ। इससे उद्योन्मुख भारत के लिए गम्भीर समस्याएँ पैदा हुईं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कांग्रेस सरकार ने देश में औद्योगीकरण के लिए पूंजीवाद मिश्रित अर्थव्यवस्था को चुना। इस व्यवस्था से परम्परित सामाजिक सम्बन्धों, संस्थानों के क्षेत्र में परिवर्तन आया। मुक्तिबोध भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था से अत्यधिक प्रभावित थे। प्राचीन समाज की आत्मनिर्भरता धर्म द्वारा अनुशासित जीवन और संयुक्त परिवार में व्यक्ति के विकास के इतिहास को समझकर ही मुक्तिबोध ने वर्तमान भारतीय समाज पर विचार किया है। मुक्तिबोध क्रमिक विकास से परिचित थे। प्राचीन मूल्य और मान्यताएँ आज क्यों अनुपयुक्त लग रही हैं? समाज में गतिरोध के क्या कारण हैं? उसका विकल्प क्या है? इन प्रश्नों पर मुक्तिबोध ने अपने साहित्य में गम्भीर चिन्तन किया है। मुक्तिबोध ने तथ्य को लक्षित किया कि प्राचीन भारतीय किसान अपने आत्मनिर्भर ग्राम समुदाय के कारण राजनैतिक हलचल से अप्रभावित रहा और अलग रहा। फलतः बाह्य आक्रमणों का सीधा प्रभाव उसके आर्थिक जीवन पर नहीं पड़ा। भारतीय किसानों की इसी आर्थिक जिन्दगी पर अंग्रेजों की औद्योगिक नीति ने आक्रमण किया, जिससे प्राचीन आत्मनिर्भर ढांचा तहस–नहस हो गया और भारतीय समाज में पुराने सामन्तीय मूल्यों के साथ नये मूल्य भी चलने लगे। परिवार में धन की महत्ता बढ़ी, मनुष्य का गुण एवं मूल्य उसकी अर्थोपार्जन शक्ति से आंका जाने लगा। इसका विस्तार से वर्णन मुक्तिबोध ने ''नये की जन्म कुण्डली दो'' डायरी में किया है। भारतीय समाज के बारे में मुक्तिबोध की मुख्य चिंता यह थी कि हमारे यहाँ पुराने नये को लेकर एक अवसरवादी दृष्टि अपनायी गयी है।

मुक्तिबोध मानवजीवन में आयी यांत्रिकता का कारण मशीनीकरण को नहीं, बल्कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को मानते हैं। समाज में इसके कारण अवसरवाद और भ्रष्टाचार का प्रादुर्भाव होता है। व्यक्ति की सारी सिद्धान्त निष्ठा, सत्य के प्रति समर्पण और सामाजिक प्रतिबद्धता आदि उनके निजी लाभ–हानि के एक मामूली से गणित के सामने निरर्थक साबित हो जाते हैं –

''सत्य के बहाने
स्वयं को चाहते हैं प्रस्थापित करना।
अहं को, तथ्य के बहाने।
मेरी जीभ एकाएक तालू से चिपकती
अक्ल क्षारयुक्त–सी होती है.....
और मेरी आँखें उन बहस करने वालों के
कपड़ों में छिपी हुई
सघन रहस्यमय लम्बी पूँछ देखती।।[1]

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध को भारतीय समाज के क्रमिक विकास की सही जानकारी थी। वर्तमान सामाजिक समस्याओं से जूझते हुए उन्हें ज्ञात हुआ कि विषमता पूर्ण वातावरण का कारण समाज व्यवस्था का दोषपूर्ण होना है, जिसे बदले बिना मनुष्य का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है। मुक्तिबोध जिन सवालों के हथियार हमारे हाथों में दे गये हैं और जो आज भी हमारे लिए अचूक हैं। यद्यपि विपरीतताएँ आज भी अधिक खतरनाक हुई हैं।''[2]

युग प्रसंगों की सामयिकता के संदर्भ में उनकी चिंतन और दृष्टि विकास का संघर्ष निरन्तर जारी रहा। जैसे परिस्थितियों का भविष्य उनकी आँखों में पहले से ही कैद हो चुका था।

''आज इस आबादी की अधिकतम संख्या के इस दैन्य, दुराशा और भुखमरी की बाढ़ में देखें तो, 'अंधेरे में' कविता के सह–नायक को जिजीविषा के तिनकों से नाव बनाकर, कवि उसके चाव और भाव की प्रतिबद्ध प्रबलता में जीते हुए, चिन्ताग्रस्त होकर देखता है।''3

काव्य नायक की इस प्रश्नकुलता से इसका संकेत मिलता है –

''किन्तु, वह फटे हुए वस्त्र में क्यों पहने है?
उसका स्वर्ण–वर्ण मुख मैला क्यों?
वक्ष पर इतना बड़ा घाव कैसे हो गया?
उसने कारावास–दुःख झेला क्यों?
.....
फिर भी उसके मुख पर स्मित क्यों है?
प्रचण्ड शक्तिमान क्यों दिखाई देता है? ''[4]

मुक्तिबोध सृजनरत रहते हुए संवेदनाओं की ऐसी ठोस जमीन पर खड़े नजर आते हैं, जहाँ से उनकी हिस्सेदारी एक ऐसे परिपक्व

चिन्तक की बनती है, जिसमें मनुष्य की पीड़ा और उसके संघर्षों के साथ हमेशा ही एक मानवीय संवाद दिखाई पड़ता है–

''चक्र से चक्र लगा हुआ है
जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओं घटनाओं का
बाहरी दुनिया में,
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया में
चलता है द्वन्द्व कि
फिक्र से फिक्र लगी हुई है।''[5]

वर्तमान पूंजीवाद भारतीय समाज में व्याप्त अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, शोषण, घूसखोरी और सत्ता के केन्द्रीकरण ने लोगों के मन में क्षोभ की भावना तो उत्पन्न की और साथ ही साथ उन्हें बांटने का कार्य भी किया, जिसके फलस्वरूप शहरों, विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थाओं का माहौल तो बिगड़ा ही साथ ही साथ ग्रामीण जीवन का शांत माहौल भी गुटबंदियों का शिकार हो गया। श्रमिकों का बड़ा हिस्सा हर वर्ष रोजगार की तलाश में शहरी और अर्धशहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर जाता है। कमजोर स्थिति, कम मेहनताना और सामाजिक सुरक्षा का अभाव इन्हें झेलना पड़ता है–

''शोषण–हत गम खाने वाले
दुख के स्वामी
अविश्रान्त के काले–काले हाथ व्यस्त हैं
रिक्त पेट की आँखों में दुःख के प्रवाह ले
जिनकी बेबस कर्मशीलता ने युग–युग के
गौर कपोलों में लाली की मदिरा भर दी।
आह! त्याग की उत्कट प्रतिमा होरी महतो, भोली धनिया
जाग रहे हैं''[6]

औपनिवेशिक गुलामी में किसान भूखों मरने पर मजबूर था, तो आज उसे वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के बाद हाशिये पर धकेल दिया गया है। बाजार पर उद्योगपतियों व पूंजीपतियों का नियन्त्रण है, जिससे वे कम लागत पर कृषि–उत्पाद खरीदकर किसानों को वास्तविक लाभ से वंचित कर रहे हैं। आज कर्ज के बोझ से दबकर किसान आत्महत्या करने को विवश हैं। मुक्तिबोध का मानना था कि कविता को वर्गों में बंटे समाज को पहचानते हुए उस व्यक्ति, उस वर्ग और उस देश के पक्ष में अपनी आवाज उठानी चाहिए जो सबसे कमजोर, असहाय और सताया हुआ है। मुक्तिबोध ने ज्ञान और दृष्टि के विकास के लिए पश्चिमी स्रोतों से प्रेरणा और सहायता ली, लेकिन यह सहायता निहित स्वार्थों के लिए न होकर समाज विकास संघर्ष और निर्माण प्रक्रिया के लिए ली गयी है। ''झरने पुराने पड़ गये'' कविता में वे आधुनिकतावाद पर व्यंग करते हुए संकेत करते हैं–

''झरने पुराने पड़ गये
उनकी उपमा अब कोई नहीं देता
शायद धोबी दे
जो वहाँ कपड़े फचीटते हैं
या किसान
जो उसमें फँसी हुई गाड़ी घसीटते हैं
लेकिन वे सभ्य नहीं हैं।
इसलिए झरने की उपमा लभ्य नहीं है।
.....
झरने पुराने पड़ गये।''[7]

मुक्तिबोध जितना बड़ा विषय लेते हैं, उससे गहरी उनके पास चिन्तन–शक्ति है। उनके साहित्य को पढ़कर हम ज्ञान, समझ और समाज तीनों का विस्तार कर सकते हैं। मुक्तिबोध समाज के सभी वर्गों की गतिविधियों, भावनाओं और आकांक्षाओं का प्रखर विश्लेषण करने वाले कवि हैं। राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय घटना चक्रों से लेकर अपने आस–पास के परिवेश के प्रति मुक्तिबोध की प्रतिक्रियाएँ इस बात को प्रमाणित करती हैं कि उनका अपने दृष्टिकोण की धुरी पर सोचना–विचारना निर्जन शून्य की उपज नहीं है। मुक्तिबोध ने समाज में व्याप्त समस्याओं को कविता में ग्रहण करते समय उनके व्यापक संदर्भ की आवश्यकता पर बल दिया है। सामान्यजन की वेदना उत्पीड़न, घुटन, निराशा तथा शोषण के चक्र में फंसे मानवों की वेदना उन्हें मर्माहत कर जाती है–

''सरकस के जोकर से रिझाते हैं निरन्तर
नाचते हैं, कूदते हैं
शोषण के सिद्धहस्त स्वामियों के सामने
व्यक्तिगत आर्थिक निज
क्षमता की हवेली पर
सुखों की चाँदनी पर
तारों–नीचे के हेतु वे
चुपचाप आदर्शों को बाजु रख या भूलकर
अवसरवादी बुद्धिमता ग्रहण कर
बिल्कुल बिक जाते हैं।''[8]

मुक्तिबोध की कविता का यह अंश आज देश में निर्मित होते जा रहे ऐसे दहशत भरे वातावरण को कितने बेहतर तरीके से अभिव्यक्त करती है। अंधविश्वास, पाखंड और तानाशाही प्रवृत्तियों का विरोध करने वाले लेखकों की कितनी निर्ममता से हत्या कर दी जाती है। आज के परिवेश में अभाव, आकस्मिकता, साजिश, उश्रृंखलता, हत्याएँ आदि मरणोन्मुखी मानसिक स्थितियाँ और कुण्ठा, तनाव और घुटन विवशतापूर्वक भोगने पड़ते हैं। मुक्तिबोध का प्रत्येक प्रयत्न समाज को शोषण से मुक्त करने का था। ''एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन'' में मुक्तिबोध सामन्ती परिवार के आन्तरिक उत्पीड़न, बलात्कार और हत्या का चित्र खींचते हैं। मुक्तिबोध का साहित्य भी विशिष्ट सन्दर्भों का साहित्य है। ये सन्दर्भ हैं वे तमाम प्रश्न जो वर्तमान में अत्यधिक ज्वलन्त और विचारणीय है। पौराणिक मिथकों में राष्ट्रीय चेतना अनुस्यूत है। वर्तमान युग में योग्य व्यक्तियों की उपेक्षा करके प्रगति के मार्ग को अवरूद्ध करने के नापाक प्रयास को मुक्तिबोध ने चिन्हित किया है। आम आदमी की आज के दौर में लुप्त हो रही मानवीय संवेदना और मानवता का अत्यन्त मार्मिक चित्रण करते हैं–

''लोकहित–पिता को घर से निकाल दिया,
जन–मन करूणा सी–माँ को हकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियर कुत्तों को पाल लिया,
भावना के कर्तव्य..... त्याग दिये,
हृदय के मन्तव्य .....मार डाले,
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,
तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,
जम गये, जाम हुए, फंस गये!!
विवेक बघार डाला, स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गये।''[9]

देशकाल, परिस्थितियों और वातावरण के बदलते स्वरूप परिवेश के अनुसार सामाजिक प्रश्नों के दायरे बदलते रहते हैं। इस समय पूंजीवाद, सामन्तवाद और समाजवाद एक साथ रहे हैं जो नए

सामाजिक विचारों और प्रश्नों को पैदा कर रहे हैं। हमारे देश में समाज और संविधान दोनों में 'सर्वधर्म समभाव' की भावना व्यक्त की जाती है, लेकिन व्यावहारिक रूप से इस मान्यता की उपेक्षा की जाती है। इस उपेक्षा से ही घृणा का जन्म होता है और जिसकी परिणति रक्तरंजित क्रान्ति के रूप में प्रकट होती है। बेरोजगारी, असंतुलित विकास ये ऐसे कारण हैं, जो नक्सलवाद, अलगाववाद, माओवाद और आतंकवाद के आन्दोलन के रूप में तत्सम्बंधी युवा अनुचित मार्ग पर अग्रसर हैं। नशे की लत, अवरूद्ध विकास आर्थिक व सामाजिक असमानता ने मानवीय संवेदनाओं को सोख लिया है, जो देश के विकास को बाधित कर रहा है और निरन्तर अपने नेटवर्क को विस्तार दे रहा है। भारत की लोकतान्त्रिक प्रणाली और सुरक्षा की दृष्टि से एक गम्भीर चुनौती बन चुका है। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता की ये पंक्तियाँ सत्ता के घिनौने और अमानवीय प्रश्न की ओर संकेत करती हैं–

''गगन में करफ्यू:
धरती पर जहरीली दीःथू:,
पीपल के सुनसान घोंसले में बैठे हैं
कारतूस – छर्रे
जिससे कि हवेली में
हवाओं के पहलू भी सिहरे''[10]

'भूल गलती' का रूपक दिन पर दिन और प्रासंगिक होता जा रहा है। उनकी 'पुकारती हुई पुकार' 'गरबीली गरीबी', 'डोमाजी उस्ताद' और 'अंधेरे में' तथाकथित आन्दोलनरत मुखौटे लगाये कवि नेताओं पर गहरा और पैना व्यंग है। चोरबाजारी, जमाखोरी, रिश्वतखोरी और स्वार्थ परायणता से खिन्न मुक्तिबोध समूची समाज व्यवस्था को दोषपूर्ण मानते हैं। इसी तरह 'कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं' कविता व्यवहारिक दृष्टि वालों पर व्यंग करती हुई, कीर्ति और यश की मंजिलों को फतह करने के स्थान पर मनुष्य–आत्मा के बदलाव के महान कार्य में दत्तचित्त होने का आह्वान करती है–

''तुम्हारे पास, हमारे पास
सिर्फ एक चीज है –
ईमान का डण्डा है,
बुद्धि का बल्लभ है,
अभय की गेति है
लक्ष्य की तगारी है – तसला है
नये–नये बनाने के लिए भवन
आत्मा के,
मनुष्य के,
हृदय की तंगारी में होते हैं हमीं लोग
जीवन की गीली और
महकती हुई मिट्टी को।''[11]

मुक्तिबोध नवनिर्माण के अभिलाषी हैं, परन्तु नवनिर्माण से पूर्व वह सभी विगलित परम्पराओं, निर्जीव व्यवस्थाओं और शोषण प्रधान जीवन मूल्यों की नये सिरे से व्याख्या चाहते हैं।

इसी धरातल पर मुक्तिबोध व्यक्ति और समाज को परिभाषित करते हैं और यह साबित कर देते हैं कि मुक्ति का प्रश्न व्यक्तिगत नहीं है। मुक्ति सामूहिक होती हैं। इसी सामूहिक मुक्ति को पाने के लिए उनकी कविताएँ अन्तहीन अन्त और कहीं खत्म नहीं होती लगातार आगे बढ़ती रहती है। वे क्रान्ति और आन्दोलन की आवश्यकता को सिर्फ अपने कालखंड भर में नहीं देख रहे थे न सिर्फ हिन्दुस्तान के सन्दर्भ में। पूरा विश्व उनकी दृष्टि में था। उनके लिए कवि–कर्म सांस्कृतिक अनुष्ठान है। वह आत्यनिष्ठ अनुभूतियों की बजाय सामाजिक संवेदन को कविता से लाते रहे। मुक्ति बोध सबका साथ सबका विकास के पथ पर चलते हुए शांति, प्रगति और समृद्धि के अभिलाषी हैं।

''याद रखो,
कभी अकेले में मुक्ति नहीं मिलती,
यदि वह है तो सबके ही साथ है।''[12]

मुक्तिबोध मध्यवर्ग की प्रकृति, मनोदशा एवं विचारधारा को व्यंजित करते हैं। संवेदनों और अनुभूतियों की चिन्तन की आँच में तपाने के बाद जैसी परिपक्व कविता हो सकती है, वही मुक्तिबोध की वाणी है। ''संवेदना से जब ज्ञान का मिलाप होता है, तब वह आदमी होने की दिशा में कदम बढ़ाता है। संवेदनात्मक ज्ञान के बिना वर्गीय यथार्थ को समझना बहुत कठिन है। मुक्तिबोध का उपरोक्त बीज सूत्र बेहद मानवीय है। गहरी संवेदना का स्पर्श पाकर मनुष्य ही नहीं कलम भी जी उठती है।''[13]

इस तरह मुक्तिबोध ने एक जागरूक कवि की भांति प्रचलित काव्यधारा की सीमाओं से निकलकर विवेकपूर्ण पथ अपनाया था। यह वह पूर्वबोध था जो किसी ज्योतिषीय ज्ञान से नहीं, बल्कि यथार्थ की आन्तरिक गतिशीलता की पहचान से पैदा हुआ। अपने समय से गहरे रूप से जुड़े होने के कारण ही मुक्तिबोध की कविता समय से आगे है। ये संवेदना और ये अनुभूतियाँ कविता की निःसंदेह महत्वपूर्ण उपब्धियाँ हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'दिमागी गुहान्धकार का ओरांग–उटाँग', मुक्तिबोध रचनावली, भाग दो पृ0 165
2. 'नया ज्ञानोदय', मलय (वरिष्ठ कवि, समालोचक) पृ0 40/सितम्बर 2014
3. 'नया ज्ञानोदय', मलय (वरिष्ठ कवि, समालोचक) पृ0 40/सितम्बर 2014
4. 'अंधेरे में', मुक्तिबोध रचनावली, भाग 2, पृष्ठ संख्या 352
5. 'अंधेरे में', मुक्तिबोध रचनावली, भाग दो, पृ0 334
6. 'बबूल', मुक्तिबोध रचनावली, भाग–एक, पृ0 175
7. मुक्तिबोध युग चेतना और अभिव्यक्ति, पृ0सं0 221
8. 'जिंदगी का रास्ता', मुक्तिबोध रचनावली, भाग–1, पृ0 270
9. 'अंधेरे में', मुक्तिबोध रचनावली, भाग–दो, पृ0 333
10. 'चांद का मुंह टेढ़ा है', मुक्तिबोध रचनावली, भाग–दो, पृ0 279, सं0 नैमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन 2011
11. 'कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं', मुक्तिबोध रचनावली भाग दो, पृ0 287
12. 'चंबल की घाटी में', मुक्तिबोध रचनावली, भाग–दो, पृ0 419
13. 'नया ज्ञानोदय', कवि त्रिलोचन, नवम्बर, 2016/37